रस

जगत् की रचना में रस एक मूल तत्त्व है। इसी रस तत्त्व से सृष्टि होती है। जिस प्रकार अद्वैतवेदान्त दर्शन में ब्रह्म, सांख्य दर्शन में पुरुष और न्याय दर्शन में परमाणु मूलतत्त्व कारण के रूप में वर्णित है। उसी प्रकार वैदिकविज्ञान में रस का मूलतत्त्व के रूप में अथवा कारणरूप में वर्णन मिलता है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार रस् धातु से अच् प्रत्यय होकर रस शब्द निष्पन्न होता है। रस का शाब्दिक अर्थ है किसी वस्तु का साररूप । यह लोक में प्रसिद्ध है। साहित्यशास्त्र में काव्य, नाटक, कहानियों में जो तत्त्व आनन्द देता है वह तत्त्व रस है। आयुर्वेद में भी वस्तु के साररूप रस का उपयोग होता है। अत एव रस का भारतीय परम्परा में अत्यधिक महत्त्व है। तैत्तिरीयोपनिषद् में रस का उल्लेख मिलता। जिसको सभी ने प्रमाण के रूप में अपने-अपने ग्रन्थ में स्थान दिया है। वैदिकविज्ञान में रस के लक्षण से बल का एवं बल के लक्षण से रस का लक्षण बनता है।

रस शब्द का अर्थ है- आनन्द, शाश्वत, पूर्ण, बल से लक्षित (बोध) होने वाला, अमृतरूप, अभय, ज्योतिरूप, अखण्ड, नित्य और अद्वय है।[1] आनन्द कहने का अभिप्राय यह है कि इस में दुःख का लेशमात्र भी स्पर्श नहीं होता है। क्योंकि जो पूर्ण होता है उस में आनन्द ही रहता है। उपनिषद् में भी आनन्द को ब्रह्म कहा गया है। शाश्वत का अर्थ है हमेशा रहने वाला। पूर्ण से पूर्ण उत्पन्न हो सकता है। अपूर्ण से पूर्ण का होना संभव नहीं है। आनन्द, शाश्वत और पूर्ण ये तीनों रस का ऐसा अर्थ है कि इसका ज्ञान पञ्च ज्ञानेन्द्रियों से होना असम्भव है। फिर इसका ज्ञान कैसे होता है। इसलिए बल से लक्षित (बोध) होने वाला कहा गया। बल के द्वारा ही रस का ज्ञान होता है। बल यह संसार है। रस कारण है और बल कार्य है। कार्य से ही कारण का ज्ञान होता है। बल कार्य और रस कारण है। इसीलिए रस को बललक्षण वाला कहा गया है। इसी प्रकार अमृत अर्थात् नहीं मरने वाला रस है, रस भय रहित है।

रस देश और काल से अनन्त है।[2] देश का अर्थ है जगह। कोई भी वस्तु किसी जगह पर सीमित रहती है। रस सीमा रहित होने के कारण देश की सीमा में नहीं आ सकता है। काल का अर्थ समय है। वर्तमानकाल, भूतकाल और भविष्यकाल इन कालों की सीमा में रस नहीं है । अत एव इसे अनन्त कहा गया है।

रस सत्ता स्वरूप है। वह सभी बलों का आश्रय (आधार) बनता है । क्योंकि वह सत्ता स्वरूप है। वह भिन्न-भिन्न तत्त्वों में अभिन्नवत् और विनाशशीलों में अविनाशीरूप में रहता

---

[1] आनन्दः शाश्वतः पूर्णो रसोऽयं बललक्षणः।
अमृतं चाभयं ज्योतिरखण्डं नित्यमद्वयम्॥ ब्रह्मसमन्वय पृ. ६. श्लोक सं. ४०
(क) रसशब्देन चामृतम्। ब्रह्मसमन्वय पृ. ५. श्लोक सं. ३६
(ख) अमृतं रस इत्युक्तम्। ब्रह्मविनय पृ. ३८. श्लोक सं. १०
(ग) शाश्वतिको बललक्षण आनन्दघनः पूर्णो रसः । शारीरकविज्ञानभाष्य, प्रथमभाग पृ. २९

[2] देशतः कालतोऽनन्तो रसः । ब्रह्मसमन्वय पृ. ६. श्लोक सं. ४३

है।[3] रस के आश्रय का तात्पर्य है कि प्रत्येक जीव में यदि रस न रहे तो जीव हो नहीं सकता है। सभी जीव में आत्मा रहती है तभी जीव का जीवन है अन्यथा जीवन नष्ट हो जायेगा। अत एव वही रस सब का आधार है। 'वह भिन्न-भिन्न तत्त्वों में अभिन्नवत्' का तात्पर्य अनेक जीव से है। जैसे राम, मोहन, श्याम ये तीनों भिन्न है परन्तु इन तीनों भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में एक रस तत्त्व अभिन्न है। वैसे ही मनुष्य, पक्षी, पशु सभी जीवनधारियों में भिन्नता है परन्तु सभी में रस तत्त्व एक है। 'विनाशशीलों में अविनाशीरूप' का तात्पर्य है कि राम, श्याम, गाय, कौआ आदि मरने वाले हैं। इसीलिए विनाशशील कहलाते हैं जबकि रस इन सभी में नहीं मरने वाला अविनाशी कहलाता है।

यदि रस न हो तो बल की स्थिति ही संभव नहीं है।[4] बल का अर्थ संसार से है और संसार की स्थिति रस पर टिकी हुई है।

रस अमृत और सत् है।[5] अमृत का अर्थ है जो मरणशील नहीं है। जीव और वस्तु मरणशील हैं। इसीलिये ये मृत या मर्त्य है जबकि रस अमृत है। सत् का अर्थ सत्तावान् और सदैव रहने वाला है। इसीलिये रस को सत् कहा गया है।

रस उच्छिन्न न होने वाला अर्थात् स्थितिशील है।[6] यहाँ 'उच्छिन्न न होने वाला' का अर्थ है जो नहीं हटता है। लोक में भी छिन्न-भिन्न का प्रयोग खूब होता है, वस्तु को हटाने के लिये। जैसे उनका घर छिन्न-भिन्न हो गया। अर्थात् नष्ट हो गया बिगड़ गया। रस नहीं हटता है । अत एव इसका नाम 'स्थितशील' है। क्योंकि रस की स्थिति हमेशा बनी रहती है।

रस भूमा स्वरूप है।[7] जिस वस्तु को नापा नहीं जा सके वह भूमा कहलाता है। भूमा का अर्थ व्यापक अर्थात् सबसे बड़ा।

रस के दो भेद हैं- निर्विशेष और सविशेष।[8] इस को इस तरह से समझना चाहिये कि कोई कपड़ा है। उस पर लाल, पीला रंग चढ़ जाता है। मनुष्य भी कुछ शृंगार कर लेता है। शृंगार या रंग से वस्तु विशेष कहलाता। विशेष का ही दूसरा नाम विशेषण है। रस निर्विशेष है। इस पर कोई रंग नहीं चढ़ता है निर्गुण या निर्विशेष कहलाता है। जो कारण स्वरूप है।

---

[3] एकः सत्तारसस्तेषां बलानामवलम्बनम्।
भिन्नेष्वभिन्नवद् भाति विनाशिष्वविनाशि च॥ ब्रह्मसमन्वय पृ. ६. श्लोक सं. ५०
(क)एकः सत्तारसः सोऽयं सर्वत्र प्रतिभाति नः। ब्रह्मसमन्वय पृ. ६. श्लोक सं. ४६
(ख) रसः सत्ता । ब्रह्मविनय पृ. १४४ गद्यभाग २२

[4] यदि न स्याद् रसस्तर्हि नोदियात् बलम्। ब्रह्मसमन्वय पृ. ६. श्लोक सं. ४७

[5] रसोऽमृतं सत् । शारीरकविज्ञानभाष्य, प्रथमभाग पृ. २९

[6] अनिच्छित्ति-स्थितिलक्षणम्-एकमेवाद्वितीयम्-अखण्डं रसो ब्रह्म। शारीरकविज्ञानभाष्य, प्रथमभाग पृ. २९

[7] भूमा रसः। शारीरकविज्ञानभाष्य, प्रथमभाग पृ. २९

[8] (क) रसं द्विधा निर्विशेषं सविशेषं च भावयेत्। ब्रह्मसमन्वय पृ. २४, श्लोक २४३
(ख) रसो निर्विशेषः । शारीरकविज्ञानभाष्य, प्रथमभाग पृ. २९, ब्रह्मविनय, पृ. ३६, श्लोक ४२६

सृष्टि की एक ऐसी स्थिति आने पर वही निर्विशेष जब विशेषण से युक्त हो जाता है सविशेष अर्थात् सगुण कहलाता है। जो कार्यब्रह्म है।

इस प्रकार पण्डित मधुसूदन ओझा ने रस का वर्णन ब्रह्मविनय, ब्रह्मसमन्वय, ब्रह्मचतुष्पदी, शारीककविज्ञान भाष्य आदि गन्थों में अनेक अर्थों में किया है। यहाँ संक्षेप में रस का सामान्य परिचय परिचय प्रस्तुत किया गया है।